International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

प्राचीन भारत में सेना का महत्व
(1500 ई॰ पू॰ से 600 ई॰ पू॰)

नाम : बजरंग लाल
शोधर्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक
मो. न. 9813205502

शोध – आलेख सार :–

इस आलेख के माध्यम से शोधार्थी द्वारा सेना की आवश्यकता व सैन्य तकनीकी के विकास पर प्रकाश डाला है। लेखक ने 1500 ई.पू. से 600 ई. पू. तक के प्रमाणों का अध्ययन करके आलेख के माध्यम से सटीक ढंग से समझाने का प्रयास किया है जिसमें वह पूर्णतया सफल रहे हैं। प्राचीन भारत में सेना के महत्व, सैन्य आयुध निर्माण कला के बारे में संक्षेप में लिखकर ज्यादा समझाना शोधार्थी के गहन अध्ययन का नतीजा है। उनका यह छोटा सा आलेख गागर में सागर के समान है।

मूल शब्द : धर्नुवेद, शस्त्र, व्यूहरचना, सैन्य विज्ञान, युद्धोपकरण, आयुध निर्माण कला

भूमिका :

सेना राज्य की रीड़ की हड्डी का कार्य करती थी जो राजा की शक्ति का आधार होती थी। शत्रु पर विजय प्राप्त करने तथा आत्मरक्षा के विशेष गुण के कारण ही सेना अपने इसी स्वरूप में वैदिक काल से लेकर आज तक, भारत में अपनी महता को प्रदर्शित कर रही है। वैदिक साहित्य में इसे धनुर्वेद तथा यजुर्वेद के उपवेद के रूप में स्वीकार किया गया है। शुक्र के अनुसार जिसके ज्ञान से मनुष्य युद्ध, शस्त्र, व्यूहरचना आदि में निपुणता प्राप्त करता है उसे यजुर्वेद का उपवेद कहते हैं। यद्यपि धनुर्वेद में वैदिक कालीन समस्त आयुधों एवं शस्त्रों के प्रहार एवं प्रतिकार का विधिवत वर्णन हुआ है।[1] फिर भी धनुर्वेद नामक उपवेद के

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

अपूर्ण अथवा आंशिक रूप में प्राप्त होने के कारण उसके तत्कालीन को प्राप्त करना अपेक्षित है। अनेक शस्त्रास्त्रों में वर्णित धनुर्बाण नामक अस्त्र प्रमुखता के कारण इस विषय को धनुर्वेद कहा गया है।[2] वैदिक काल में शस्त्र प्रयोग में लाये जाते थे परन्तु प्रायः सेना धनुर्बाण से ही युद्ध करती थी।[3] अतः युद्ध में प्रमुख शस्त्र होने के कारण धनुर्वेद के मन्त्र दृष्टा ऋषि ने उस शस्त्र विशेष पर ही उसका नामकरण उचित समझा। वैदिक काल के बाद के साहित्य तथा अभिलेखों में धनुर्वेद के अनेक उद्धरण उद्धृत किये गये हैं। अग्निपुराण में धनुर्वेद की गणना अठारह विद्याओं के अन्तर्गत की गई है।[71] धनुर्वेद वह विद्या थी जिसके ज्ञान से सैनिक शस्त्रास्त्रों एवं आयुधों का कुशलतापूर्वक उपयोग कर सकते थे तथा युद्ध स्थल में अपने सुरक्षार्थ तथा शत्रु सैनिकों के संहारार्थ व्यूह (संग्राम–संरचना) निर्माण कर युद्ध कर सकते थे।[4] अभ्यास के द्वारा धनुर्धर योद्धा अपने कार्य की सिद्धि करते थे अर्थात् शत्रु से विजय प्राप्त करते थे तथा पराक्रमी के भय से शत्रु उसी प्रकार भागते थे जैसे सिंह के भय से मृग भागते हैं।[5]

बाद के काल में, अपने क्षेत्र की विशालता के कारण शायद धनुर्वेद अर्थशास्त्र तथा दण्ड नीति का विषय बन गया। अतः इसका प्रयोग अर्थशास्त्र अथवा दण्डनीति से सम्बन्धित अनेक नीतिपरक ग्रन्थों एवं स्मृतियों में किया जाने लगा – जैसे कि अर्थशास्त्र । अर्थशास्त्र दो शब्दों के संयोग से बना हुआ है अर्थ एवं शास्त्र। प्राचीन भारत में अर्थ का अर्थ धन से नहीं बल्कि पृथ्वी से किया जाता था। अतः पृथ्वी को प्राप्त करने की व प्राप्त पृथ्वी को सुरक्षित रखने एवं पालन करने की व्यवस्था की विधियों को ही अर्थशास्त्र कहते थे। पृथ्वी की प्राप्ति और उसकी सुरक्षा सेना के अभाव में सम्भव नहीं है। दण्ड नीति दुष्टों अपराधियों तथा अव्यवस्था फैलाने वालों को दंडित करने तथा दुर्बलों की रक्षा करने एवं धर्म के पालन करने के लिए प्रयोग में लायी जाती थी। इसी उद्देश्य से कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश किया था।[6] आक्रमणकारी एव दुष्ट व्यक्तियों का पराभव तथा उनके द्वारा प्रातृर्भाव अव्यवस्था का निराकरण सेना के अभाव में असम्भव ही था। यही कारण है कि प्राचीन ग्रंथों में सेना का विस्तृत और वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। यह स्पष्ट है कि

प्राचीन भारत में सैन्य विज्ञान पर स्वतन्त्र ग्रन्थ अनुपलब्ध होने पर भी सैन्य विज्ञान अपने क्षेत्र व्यापकता के कारण प्राचीन साहित्य एवं अभिलेखों में विस्तृत एवं वैज्ञानिक रूप से वर्णित हुआ है।[7]

सैन्य विज्ञान अथवा धुनर्वेद की इस परिभाषा के अन्तर्गत सैन्य विज्ञान का क्षेत्र बहुत विशाल प्रतीत होता है क्योंकि सैनिकों के लिए पर्याप्त आयुधों का निर्माण, युद्ध के कारणों का राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक विश्लेषण, सैनिकों का अप्रवेशन एवं उनका प्रशिक्षण, उनका वेतन तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार पारिश्रमिक एवं पुरस्कार आदि की व्यवस्था करना अत्यंत जटिल कार्य था। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक आदि सभी परिस्थितियों को सेना प्रभावित करती थी। इन्हीं परिस्थितियों के आधार पर सेना का संगठन होता था तथा कूटनीतिक योजना का निर्धारण होता था। आक्रमण एव किले निर्माण के समय इन भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन करके मूर्त रुप दिया जाता था। अतः हम कह सकते हैं कि सेना के क्षेत्र का अर्थ उन सभी समस्त क्रिया–कलापों से था जिससे उसका संगठन, कार्यकुशलता, आयुधों एवं युद्धोपकरण की आपूर्ति, राजनीति, अर्थनीति आदि प्रभावित होती थी।

सेना की आवश्यकता

प्राचीन साहित्य से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में इस पृथ्वी पर कोई राजा अथवा राज्य नहीं था।[8] राजा के अभाव में स्थिति बड़ी विकट थी। चारों तरफ अराजकता की स्थिति थी, यह भयानक अराजकता की स्थिति ज्यादा दिन तक न रहे और किसी तरह लोगों के लिए उत्तम शासन कर्ता नियत करने लिए लोग विचार करते रहे। उनके विचारों के फलस्वरूप वैदिककाल के ब्राह्मण साहित्य में राज्य शासन की दस प्रणालियों का स्पष्ट उल्लेख पाते हैं।[9] छोटे छोटे राज्य अलग–अलग राज्यों की घोषणा करते हुए विशाल साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा रखते थे। तथा सार्वभौम सम्राट बनना चाहते थे।[10] मैकडानल और कीथ भी इन राज्यों को साम्राज्यवादी ही मानते हैं।[11] प्रभुसत्ता प्राप्त करने के पश्चात अथवा साम्राज्य स्थापित करने के लिए नरेश राजसूय, अश्वमेघ यज्ञ करके साम्राज्य स्थापित करता है।

ऋषियों द्वारा प्रेरित इस प्रकार के यज्ञों के सम्पादन में राजाओं को युद्ध करने पड़ते थे। सेना के अभाव में युद्ध में विजय प्राप्त कर साम्राज्य स्थापित करना सम्भव नहीं है। अतः सेना साम्राज्य अथवा राज्य का एक अविभाज्य एवं आवश्यक अंग है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेखित है कि सभी राज्यों में सेना अनिवार्य रूप से रही होगी क्योंकि ये सभी राज्य प्रजापति यज्ञ करके राजा, वाजपेय यज्ञ करके सम्राट, अश्वमेघ से एकराट् और पुरुषमेघ यज्ञ करके विराट बनने की कामना करते थे।[12] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार राट्, सम्राट आदि प्रभुसत्ता प्राप्त करने के लिए इन्द्र का अभिषेक हुआ।[13] राजा अनेक यज्ञों के सम्पादन से अधिकाधिक शक्ति संगठित कर सकता था। कोई भी राजा अश्वमेघ, वाजपेय आदि यज्ञों के अनुष्ठान से राज्य का विस्तार कर सकता था। और सेना की अनुपस्थिति में ऐसा सोचना भी असंभव है इस प्रकार हम कह सकते है कि 'राज्य' शब्द से सत्ता और संगठन के अर्थ का बोध होता है।[14] उसमें परवर्ती कालीन साहित्य की भाँति राज्य के सात अंगों की परिकल्पना नहीं की गई थी। राज्य शब्द शासक और शासित वर्गों के उस समुदाय को वर्णित करता है जो एक निश्चित भू–भाग में जन समाज विधि–व्यवस्था के अधीन रहते थे। वैदिक साहित्य में ऐसे राज्य के अंगों को रत्निन् कहा गया है जिनकी संख्या अथर्ववेद में पाँच और तैत्तिरीय संहिता में बारह बतलायी गई है। उसमें सेनानी और ग्रामणी का उल्लेख हुआ है। सेनानी सैनिकों का प्रमुख नायक होता था और सैनिकों का सर्वोच्च अधिकारी होता था जिसकी नियुक्ति राजा अपने राज कार्यक्षेत्र के बढ़ जाने पर किया करता था। ग्रामणी ग्राम का रक्षक तथा ग्राम का प्रमुख यौद्धा होता था। मुसीबत के समय में ग्राम के समस्त यौद्धा, सैनिक, ग्रामणी के नेतृत्व में राजा की सहायतार्थ आते थे।[15] पंचविश ब्राह्मण में एक सूची उन वीरों को प्राप्त होती है जो राजा के सहायक होते थे।[16] निश्चय ही ये वीर सैनिक रहे होंगे जो सेनानी अथवा ग्रामणी के नेतृत्व में कार्य करते रहे होंगे। राजा सेनानी और ग्रामणी की सेना के सहयोग से यज्ञों के माध्यम से समुद्रपर्यन्त साम्राज्य स्थापित कर चक्रवर्ती कहलाता था। अतः उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सेना राज्य की रीड की हडडी का कार्य करती थी जो राजा की

International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

शक्ति का आधार थी।

आयुध निर्माण शालाएँ :

मानव जीवन के शुरुआती चरण में हाथ, नाखून, दाँत, पाषाण, खंड तथा वृक्षों की टहनियों को आयुध के रुप में प्रयोग किया जाता था। लोहे तथा ताँबे आदि धातु के आविष्कार के बाद ही मजबूत धातु के बने आयुधों का उपयोग होने लगा। इन आयुधों का निर्माण कैसे और किसके द्वारा होता था? इसके बारे में कुछ भी कहना असम्भव प्रतीत होता है। प्रारंभिक काल में पाषाण खण्डों के आयुध एक पत्थरों को दूसरे पत्थर पर पटकर, तराशकर, फलक निकालकर आदि पद्धतियों से बनाये जाते थे। प्रतिघात पद्धति से धार निकाले जाते थे। बाद के काल में इन आयुधों को तीखा तथा नुकीला बनाने का कार्य रगड़ने और पालिश–पद्धति से होने लगा।[17] यजुर्वेद में अन्य व्यवसायियों के साथ युद्ध के उपकरण बनाने वाले व्यवसायिक जातियों का उल्लेख है। इस वेद में युद्धोंपकरण बनाने वाले रथकार तक्षण, कर्मार, इषुकार, धनुषकार, ज्याकार, रज्जु सर्प, विदलकारी, हस्ति अश्वप, अयस्ताप, चर्म्मन, कोशकार है।[18] वैदिककाल के परवर्ती साहित्य में भी युद्ध के उपकरणों के निर्माणकर्त्ता वही प्राप्त होते हैं जो कि वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। युद्ध उपकरण के श्रेष्ठ निर्माणकर्त्ता विश्वकर्मा कहे जाते थे। यह विश्वकर्मा आजकल के अभियन्ताओं के समान होते थे जो समस्त आयुघ निर्माण करने वाले शिल्पियों में श्रेष्ठ होते थे।[19] विश्वकर्मा के समान ही त्वष्टा भी श्रेष्ठ आयुध निर्माणकर्त्ता थे। ये शिल्पविद्या में पारंगत होते थे।[19]

आगे चलकर वैदिककालीन व्यवसायिक जातियों के द्वारा कारित व्यवसाय काव्यकाल तथा युद्धकाल में परम्परागत व्यवसाय हो गया था। पैत्रिक व्यवसाय के अंतर्गत एक बालक बचपन से ही अपने पिता का व्यवसाय में हाथ बंटाता तथा देखकर सिखता था। शिल्पी के पुत्र द्वारा अपने पिता के ही व्यवसाय को अपनाने की चर्चा प्रायः ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। पैतृक व्यवसाय करने वाले लोगों को एक ही स्थान या ग्राम में बसाया जाता था।[20] ऐसे ग्रामों में रहने वाले बढ़ई, चर्मकार, रथकार, धनुषकार आदि शिल्पकार बसते थे। इन शिल्पियों को ग्राम शिल्पी कहा

जाता था।[21] पैतृक व्यवसाय होने पर भी कोई व्यक्ति किसी समय किसी व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय को कर सकता था और इससे उसकी सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था।

प्राचीन काल में निरन्तर चलने वाले विशाल युद्धों में सबसे अधिक और मुख्य आवश्यकता आयुधों की होती थी। बड़े परिमाण में आयुध युद्ध के समय तब ही उपलब्ध हो सकते थे जब कुछ व्यक्ति केवल आयुध बनाने के लिए ही नियुक्त हों। प्राचीन काल का सर्वाधिक प्रधान आयुध धनुष–बाण थे। धनुष की संख्या सीमित होने पर भी बाणों की असीमित संख्या की आवश्यकता होती थी। अतः इनकी अत्यधिक आवश्यकता के कारण ही धनुष और बाण का निर्माण करने वाले व्यवसायी महत्वपूर्ण हो गये थे। धनुष के विभिन्न अंगों का निर्माण करने वाले अलग–अलग व्यवसाय के व्यक्ति थे। कुछ व्यक्ति धनुष निर्माण करते थे, कुछ व्यक्ति ज्या निर्माण करते थे और कुछ व्यक्ति केवल बाणों का निर्माण करते थे। इनके लिए प्राचीन साहित्यकार में धनुषकार, इषुकार तथा ज्याकार शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। रथों के निर्माण के लिए भी एक व्यवसायी था जो रथकार नामक व्यवसाय करता था। धनुष की प्रत्यंचा का निर्माण गाय के चमड़े से होता था। घोड़े के लगाम, रथ के विभिन्न भागों को बांधने के लिए, कवचों को बांधने वाली पाश, चर्म रूप में कवच आदि का भी निर्माण चमड़े से होता था। चमड़े की निरन्तर आवश्यकता होने के कारण चर्म व्यवसाय भी प्रारम्भ हो गया था।[22] इस व्यवसाय के करने वाले को चर्मकार कहते थे। युद्ध के समय कवच, मुकुट बाजुबंध आदि सुरक्षात्मक उपकरणों का प्रयोग होता था। उनका निर्माण धातुओं, चमडे अथवा कपास आदि के द्वारा होता था। धातुओं से वस्तुओं का निर्माण करने वाले कर्मार नामक व्यवसायी का भी उल्लेख है।[23] चर्मों से वस्तुओं का निर्माण करने वाले चर्मकार और सूत्रों से युद्धोपकरणों का निर्माण करने वाले सूत्रकार व्यवसायी होते थे। युद्ध में दुन्दुभी आदि अनेक रणवाद्य, ध्वज और अन्य अनेक आवश्यक उपकरणों का उपयोग होता था। इसके निर्माण में भी अलग–अलग व्यक्ति रहते थे। युद्ध में सोमपान या सुरापान का भी प्रचलन था। अतः सुरा का भी निर्माण निरन्तर होता था। युद्ध में

हाथियों और अश्वों की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता पड़ती थी जिसकी पूर्ति अश्वपा और हस्तिपा नामक व्यवसायी करते थे।[24] इन आयुधों युद्धोपकरणों के अतिरिक्त असि, परसु, ऋष्टि, गदा, शतघ्नि, परधि, चक्र, मूसल आदि आयुधों का निर्माण भी किया जाता था। इन आयुधों का निर्माण संभवतः कर्मार नामक व्यवसायी करता रहता था तभी आवश्यकता के समय सभी आयुधों की पूर्ति होती थी। कर्मार नामक व्यवसायी इन आयुधों के निर्माण के अतिरिक्त इषुकार के कामों में भी सहयोग करता था। नाराच नामक बाण कर्मार ही बनाता था।[25] अग्नि होत्री जी के अनुसार कर्मार का सहयोगी अयस्कार था जो लोहे को गला कर कृषि के अन्य उपकरणों के साथ युद्धोपकरणों – शस्त्रास्त्रों का निर्माण करता था।[26] यह सभी व्यवसायी युद्धोपकरणों के उत्पादन में निरन्तर सहयोग करते थे। इस प्रकार समस्त आयुधों एवं युद्धोपकरणों को बनाने के लिए प्राचीन काल में व्यवसायी थे जो शिल्पकार कहलाते थे। ये शिल्पकार विभिन्न पदार्थों से युद्ध के विभिन्न उपकरणों को बनाते थे। इन उपकरणों का निर्माण स्त्रियाँ भी करती थी।[27] इस प्रकार ये व्यवसायी निरन्तर इसका निर्माण करते रहते थे। युद्ध के समय पर इन व्यवसायियों से युद्धोपकरणों को सैनिक तथा राजा खरीदते थे। ऐसा भी सम्भव है कि वैदिक कालीन राजा इन व्यवसायियों को ऋण आदि देकर युद्धोपकरण तैयार कराते रहे हों।

वैदिक काल के परवर्ती काल से युद्ध के शस्त्रास्त्रों तथा युद्धोपकरणों की पूर्ति के लिए उनका निर्माण स्पष्ट रूप से राज्य के संरक्षण में होने लगा। यह संरक्षण नगर के बाहर तथा भीतर दोनों स्थानों पर था। राजा दुर्गों में चतुर शिल्पियों को बसाने लगे थे जो शस्त्रास्त्र बनाने में चतुर और दक्ष थे।[28] युद्धावसरों पर युद्धोपकरणों का अधिक मात्रा में ये निर्माण करते थे।[29] अयोध्या नगरी में हथियार बनाने वाले कारीगर थे।[30] राज्य से प्राप्त निर्माण सामग्री चार माह तक चल सकती है। राजा ऐसे शिल्पियों को धन धान्य देकर अनुग्रह प्रदर्शित करता था। राज्य के कारीगरों का भरण–पोषण राज्य पर निर्भर था।[31] राजा गाय, बैल तथा अजगर आदि के चमड़ों से हाथियों की रक्षा के लिए कवच बनवाता था। इसके

अतिरिक्त लोहे की कीलें, चांवर, चमकीले और पानीदार शस्त्र, कीले और लाल रंग के कवच, ध्वज पताकाएँ, ढाल आदि पर्याप्त मात्रा में बनवाता था।[32] इन शस्त्रास्त्रों तथा युद्धोपकरणों को रखने के लिए दुर्ग में एक आयुधागार होता था। उसका अध्यक्ष आयुधागार का अध्यक्ष होता था। दुर्ग के अन्तर्गत समस्त शस्त्रास्त्रों तथा युद्धोपकरणों का उत्तरदायित्व अध्यक्ष ही रहता था। राजा दुर्ग के बाहर तथा दुर्ग के अन्तर्गत बनने वाले आयुधों तथा शास्त्रास्त्रों का निरीक्षण करता था।[33] नगर के भीतर बाजार लगते थे जहाँ सेना सम्बन्धी आवश्यक सामग्री उपलब्ध रहती थी।[34] जैसे – बाण, रथ तथा आयुध।

सारांश :–

अतः हम कह सकते है कि प्राचीन काल में युद्धोंपकरण बनाने के लिए विशेष तकनीकी का प्रयोग किया जाता था , जो कि आज के समय में भी अत्यंत लाभकारी तथा महत्वपूर्ण है। जिसके आधार पर शस्त्र निर्माण करके हम अपने देश का स्वर्णिम गौरव का लोहा पूरे विश्व को मनवा सकते है।

सन्दर्भ सूची

1. मजुमदार, बी.के, मिलिट्री सिस्टम इन एन्शियन्ट इण्डिया, भूमिका, पृ02
2. दिक्षितार, बी.आर.आर, वार इन एशियण्ट इण्डिया, पृ. 93, मैकमिलन एण्ड कं. लिमि., मद्रासः सेकेण्ड एडीशन, 1948 में प्रकाशित।
3. चक्रवर्ती पी.सी., दी आर्ट ऑफ वार इन एन्शियण्ट इण्डिया, भूमिका, पृ. 12–13
4. अग्निपुराण, विल्सन, पृ. 67
5. चक्रवर्ती, पी.सी., दी आर्ट ऑफ वार इन एन्शियण्ट इण्डिया, भूमिका, पृ. 10
6. धनुर्वेद, पृ. 1 श्लोक 4, प्रकाशित कर्मवीर महामण्डल, तिरंगाभवन

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

काठमाण्डू

7. गीता, अध्याय 2/38–39

8. कथा सरित्सागर, 6/22, भागवतपुराण, 1/7/44, 3/12/28, मत्स्यपुराण, 22/2

9. अथर्ववेद, 8/10/1

10. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/6, 8/15

11. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/15

12. मैकडानल और कीथ, वैदिक इण्डेक्स, पृ. 246–47

13. गोपथ ब्राह्मण, भाग 1, पृ. 77–78

14. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/13

15. अथर्ववेद, 3/4/2, 11/6/15, 12/3/21, 18/4/31, 4/8/1, तैतरीय संहिता, 2/1/3–4, 2/6/6/5, 7/5/8/3, ऐतरेय ब्राह्मण 7/3, जैमिबी ब्राह्मण, 1/4/5, शतपथ ब्राह्मण, 5/1/1/12

16. अल्तेकर, प्राचीन शासन पद्धति, पृ. 169/170

17. पंचविश ब्राह्मण, 19/1/14

18. संकालिया, एच0डी0, स्टोन एज टूल्स, देयर टेक्नीकल नेम्स एण्ड प्रोवुल फंक्सन, पृ 0 18–36, 32–42,78

19. युर्ज–30/6,7,8,11,14,15

20. हरि0 विष्णु0– 98/3–4

21. रामायण 4/5/1/1–13

22. महावडकि ग्राम जातक 2, पृ018

23. अग्रवाल, पाणिनि परिचय, अध्याय 4, पृ070

24. यर्जु0 30/15

25. वही0 3/7

26. वही0 30/11

27. कर्ण पर्व 46/30–31

28. अग्निहोत्री प्रभुदयाल, पातंजलिकालीन भारत पृ0 313

29. रामायण, 1/21/15—17

30. सभापर्व 5/36, मत्स्य पुराण अ0 215

31. हरि0 विष्णु0 42/28

32. रामायण 2/83/13, 2/5/10—11

33. सभा पर्व0, 5/1/9, 5/72 अनुशासन पर्व 90/9—12, आश्राम पर्व0 5/40—42

34. शान्ति पर्व, 100/7—9

35. मनुस्मृति, 8/4/9

36. जातक 2, 267, 4, 488, 6, 98